EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 12, Issue 1, January-June, 2023, Available online at: www.eduzonejournal.com

गीता श्री के कथा साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोण

पूनम देवी[1], डॉ अनिल कुमारी[2]

[1]शोधार्थी, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
[2]प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

सार

इस प्रकार अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों से साहित्य की परिभाषा के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है फिर भी कोई ऐसी व्यापक एवं सर्वमान्य परिभाषा अभी तक स्थिर नहीं हो पाई है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि यही परिभाषा साहित्य के उस अर्थ की द्योतक है, जिसके अर्थ में आज व्यापक रूप से 'साहित्य' शब्द का प्रयोग हो रहा है। साहित्य को समाज का दर्पण बताया गया है। ऐसा इसलिए कहा गया है कि जैसे दर्पण में अपना मुँह देखकर मनुष्य अपने मुख के सब दोष दूर करने का प्रयास करता है उसी प्रकार साहित्य में मानव जीवन को ऐसे सुन्दर, मंगल और पूर्ण रूप से चित्रित किया जाता है कि पाठक या श्रोता उसे पढ़ या सुनकर अपने दोषों और त्रुटिओं का संस्कार और परिहार कर सके।

मुख्य शब्द: गीता श्री, सिद्धांत, दृष्टिकोण, समर्पित जीवन ।

परिचय

मानव मन के अनेकानेक भावों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त, सर्वोत्कृष्ट एवं प्रभावी माध्यम है, इसलिए साहित्य चाहे कैसा भी हो किसी भी काल रूप व भाषा में लिखा गया हो, कदापि मानव–जीवन से सर्वथा असम्बद्ध नहीं हो सकता।'

मानव जीवन से अलग न होने के कारण ही साहित्य, जीवन–मूल्यों से भी अलग नहीं रह सकता, क्योंकि मूल्यों का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है तथा श्रेष्ठ एवं जीवित साहित्य वही है जो जीवन की हर बहती धारा को आत्मसात् करता हुआ जीवन मूल्यों के निरंतर संपर्क में रहते हुए उनका प्रत्येक दृष्टिकोण से वर्णन कर सके। वस्तुतः मानव जीवन अत्यंत विविधतापूर्ण तथा विकासशील रहा है। उसके जीवन की अभिव्यक्ति विभिन्न क्रियाकलापों के माध्यम से होती है। ये क्रियाकलाप दूसरे मानव के अधिकारों का हनन न करे, इसलिए सर्वप्रथम कुछ नियमों अथवा मूल्यों का निर्माण किया गया। कालान्तर में इन्हीं से जीवन मूल्यों का जन्म हुआ।

डॉ० अनिल कुमार मिश्र ने कहा है ''मानवीय विकास हेतु निर्धारित आदर्श एवं मान्यताओं का ही दूसरा नाम जीवन मूल्य है।'' इन मूल्यों में रंग सर्वत्र साहित्य में बिखरे नज़र आते हैं, क्योंकि किसी भी युग का साहित्य जीवन–मूल्यों से अछूता रहा हो ऐसा कहना कठिन ही नहीं असंभव भी है।

साहित्य में कथा साहित्य का योगदान

कथा शब्द की व्युत्पति 'कथ' से हुई है, जिसका अर्थ है 'कथन करना'। इस कथा की श्रेणी में ऐतिहासिक, पौराणिक, कल्पनामूलक कहानी भी आती थी। प्राचीन वैदिक एवं बाद के साहित्य में कथा का अन्य रूप

आख्यायिका भी मिलता है। आख्यायिका में उपदेशात्मक की प्रधानता होती है। कहानी का एक रूप है आख्यान। कथा के ही पर्यायवाची के रूप में कथानक का भी कहीं–कहीं प्रयोग हुआ है। 'छोटी कहानी' के रूप में गल्प भी चर्चा का विषय बना तथा कहीं–कहीं किस्सा शब्द का प्रयोग भी कहानी के लिए हुआ।'' लोककल्याण भावना और लोकतंत्र तत्त्व का जितना सुन्दर समन्वय कथा इस विधा में होता दिखाई पड़ता है, उतना किसी अन्य विधा में नहीं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि ''पुराने ढंग की कथा कहानियों में कथा का प्रभाव अखण्ड गति से एक ओर चला चलता था, जिसमें घटनाएँ पूर्वापर क्रम से जुड़ती हुई सीधी चली जाती थी। परन्तु यूरोप में जो ढंग के कथानक नॉवेल के नाम से चले और बंग भाषा में आकर उपन्यास कहलाये, मराठी में वे कादम्बरी कहलाने लगे। वे कथा के भीतर की कोई भी परिस्थिति आरम्भ में रखकर चल सकते हैं और उनमें घटनाओं की श्रृंखला लगातार सीधी न आकर इधर–उधर और श्रृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है। घटनाओं के विन्यास की यह वक्रता या विचित्रय उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता है, जो उन्हें पुराने ढंग की कथा कहानियों से अलग करती है।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कथा साहित्य की वह लध्वाकार गद्यात्मक विधा है, जिसमें कलाकार जीवन या जगत की किसी एक घटना, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, भावना या विचार को लेकर एक निश्चित कला विधि का अनुसरण करता हुआ ऐसी संवेदना और प्रभावान्विति का सृजन करता है जो पाठक को भावविभोर कर रसासिक्त करने में समर्थ होती है।

संस्कृति का विघटन एवं सभ्यता का विकास

आज का युग सांस्कृतिक विघटन का युग कहा जाता है। विघटन का अर्थ है – टूट जाना और टूट–फूट की स्थिति तब आती है जब कोई तत्व अथवा वस्तु विनाश की ओर जा रही है। टूट–फूट विनाश व निर्माण दोनों की प्रक्रिया में आवश्यक है।

आचार्य हजारी प्रसाद की दृष्टि में ''मनुष्य अपनी एक सामान्य संस्कृति पाने के लिए बहुत व्याकुल है। उसने उसे पूरी तरह से पाया नहीं है – ''पर उसे पाने के लिए व्यग्र भाव उद्योग कर रहा है। यह मार–काट, नोच खसोट और झगड़ा भी उसी प्रयत्न के अंग है।''

संस्कृति अर्थात् जीवन व्यवहार सम्बन्धी मूल्य सर्वदा ही निर्माण की प्रक्रिया में रहते हैं। किसी भी बिन्दु पर उनमें ठहराव नहीं आ सकता, क्योंकि इन मूल्यों का निर्माण एक तत्त्व से न होकर अनेकानेक तत्त्वों से होता है। आज सांस्कृतिक विघटन शब्द सांस्कृतिक पतन अथवा विनाश के अर्थ में हो रहा है।

सभ्यता से संस्कृति की ओर उन्मुख होने की क्रिया को स्थूल से सूक्ष्म, अथवा बाह्य से अन्तर की ओर उन्मुख होने की क्रिया माना जा सकता है। सभ्यता के विकास के चार सोपान है – (1) आर्थिक व्यवस्था, (2) राजनैतिक संङघटन, (3) नैतिक परम्परा, (4) सौन्दर्य बोध को तीव्र करने की योजना। जब ये सभी समरस, एकीभूत या परस्पर अर्न्तमुक्त हो जाते हैं तो परिणामस्वरूप संस्कृति का निर्माण होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है – ''सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहज, लभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आन्तरिक आनन्द की अभिव्यक्ति।''

सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति का आन्तरिक विकास। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान सुविधा–असुविधा पर रहती है, संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर। सभ्यता नजदीक की ओर दृष्टि रखती है, संस्कृति दूर की ओर, सभ्यता का ध्यान व्यवस्था पर रहता है, संस्कृति का व्यवस्था से परे किसी अन्य केन्द्र पर।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृति पुरातन परम्पराओं द्वारा अर्जित की हुई निष्ठा है और सभ्यता युग विशेष की प्रवृत्तियों की संवाहिका। सभ्यता और संस्कृति एक ही विकास के दो पहलू हैं। सभ्यता स्थूल होती है और आविष्कार की दिशा की ओर संकेत करती है तो संस्कृति उस विकास के चिन्हिन, सुन्दर, शालीन, सूक्ष्म तत्त्वों की ओर।

आदिम बनैली के अनुसार, ''सामाजिक जीवन की ओर मनुष्य की प्रगति को सभ्यता कहते हैं, उसी प्रगति की सत्य, शिव और सुन्दर रुचिर परम्पराओं को संस्कृति की संज्ञा देते हैं।''

संस्कृति और सभ्यता भिन्न होते हुए भी एक–दूसरे की निर्माण और पूरक है। संस्कृति यदि सभ्यता को मानव हित की ओर उन्मुख करती है तो सभ्यता संस्कृति को समृद्ध बनाती है। सभ्यता के कुछ उपकारक स्वरूप संस्कृति का निर्माण करते हैं और संस्कृति भी अपने स्पन्दन, गतिशीलता/परिष्करण और चेतना उत्पन्न करने की नवीन क्षमता से तिक्त होने पर सभ्यता में बदल जाती है।

''सभ्यता मनुष्य के मनोविकारों की द्योतक है, संस्कृति आत्म के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है, सभ्यता मनुष्य को प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत करती है, संस्कृति उसकी आन्तरिक और मानसिक कठिनाइयों पर काबू पाने में सहायक सिद्ध होती है।

गीता श्री का व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति के विशेष गुण ही व्यक्तित्व के अंतर्गत आते हैं। प्रत्येक साहित्यकार को उसका आसपास का वातावरण विशेष रूप से प्रभावित करता है क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपने साहित्य लेखन के लिए सामग्री अपने आस–पास के परिवेश से ही लेता है।

हिन्दी साहित्य में न केवल पुरूषों ने लेखन कार्य किया बल्कि प्रत्येक युग में प्रतिभा सम्पन्न स्त्रियों ने भी जन्म लिया है। हिन्दी गद्य के कथा साहित्य में महिला लेखिकाओं का आगमन एक युगान्तकारी घटना है। स्त्रियों का अपनी बात रखने के लिए परिवार समाज के प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता था। समाज में व्याप्त इस प्रकार के प्रतिबंधां का सामना करते हुए गीताश्री एक पत्रकार, सम्पादक व साहित्यकार के रूप में उभर कर सामने आई।

गीता श्री के कथा साहित्य का शिल्प–विधान

कलाकार या रचनाकार अपने अर्थगाम्भीर्य, विचार प्रवाह एवम् कौशल का निर्वाह जिस माध्यम से करता है वह शिल्प विधान कहलाता है।

शिल्प ही वह टूल, तकनीक है, या साधन है जिसके माध्यम से शब्दों को उचित प्रकार से गुम्फित किया जाता है। सूक्ष्म एवं अमूर्त भावों को स्थूल एवं मूर्त रूप प्रदान कर सकें, यह शिल्प की विशेषता व विशेष गुण है। कथा साहित्य की आत्मा उसका कथानक होता है व शिल्प उसका शरीर होता है। भाषा ही सौन्दर्य को बढ़ाने का कार्य करती है। शिल्प विधान के अन्तर्गत भाषा, शैली शब्द प्रकार लोकतत्व, लोकविधा आदि का ध्यान रखा जाता है। भाषा रचनाकार की भावना को सफल रूप में प्रस्तुत करती है। भाषा रचनाकार की संवेदनाओं, भावनाओं, उलझनों आदि को वहन कर पाठक को अपनी कृति कीी तरफ आकर्षित करती है।

डॉ० त्रिभुवन सिंह के अनुसार, ''उपन्यास में अभिव्यक्ति पाने वाले जितने प्रसंग, व्यक्ति अथवा समाज होते हैं, उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाए यदि शिल्प न हो। इसके अभाव में कृति हवाई किला बनकर रह

जाएगी। कल्पना और यथार्थ के भेद को समाप्त करने का काम शिल्प ही करता है, जिसके माध्यम से अभिप्रेत भावों तथा उद्देश्यों का रूपान्तरण सम्भव होता है।

किसी भी विचार अनुभूति भाव और उसके प्रगति कारण की प्रक्रिया अभिव्यक्ति कहलाती है। अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट तरीका तभी सार्थकता प्राप्त करता है जब उसमें विचारों की श्रेष्ठता होती है। एक रचनाकार अपनी अनुभूतियों को जिस माध्यम से अभिव्यक्ति देता है उसे शिल्प की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। किसी भी रचना की संप्रेषणीयता और उसकी प्रभावोत्पादकता शिल्प की सहजता, स्वाभाविकता और चारुता के ऊपर निर्भर करती है। किसी भी व्यक्ति के विचार तभी किसी को प्रभावित कर पाते हैं जब उसके पास अभिव्यक्ति की शैली सुंदर होती है।

अतः अनुभवों के संप्रेषण और अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार कश्य के अनुकूल शिल्प को तलाशने के लिए निरंतर संघर्षरत रहता है। मानविकी पारिभाषिक कोश में शिल्प को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि – ''किसी भी उत्कृष्ट रचना में भावों का गाम्भीर्य, विचारों की गरिमा एवं शैली का उत्कर्ष तो पाया ही जाता है, किंतु साथ ही समग्र रूप से जब उस रचना का मूल्यांकन करते हैं, तो इन सब तत्वों की पारस्परिक संबंध योजना एवं निर्वाह कलाकार की कलाविषयक निपुणता या दक्षता पर निर्भर करती है। इसे ही कला का शिल्प कहते हैं।'' प्रत्येक रचनाकार की हर रचना की अपनी तरह की भाषा होती है। किंतु यदि वह घटना के अनुकूल है, पत्रानुकूल है, मनोभावों के अनुकूल है और देश, काल और वातावरण के भी अनुकूल है तो वह पाठक के चित्र के भी अनुकूल हो जाती है और पाठक उसे रचना में डूबता उतरता चला जाता है। गीताश्री अपने विषय की संवेदना के अनुरूप भाषा शैली अपनाती है। इनका रचना विधान विषयानुकूल प्रवाह तथा संरचनात्मक अन्विति सहृदय पाठक के लिए रमणीय वस्तु बन जाती है। इनके पास भाषाई विविधता तो है ही, साथ ही छोटी से छोटी घटनाओं और बातों का वर्णन क्षमता अकल्पनीय है। इनके शिल्प के संबंध में कुछ विचार दृष्टव्य है।

वैज्ञानिक परिभाषा कोश में परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''साहित्यिक क्षेत्र में रचनाकार की वह कलागत दक्षता या निपूर्णता है जिसके द्वारा वह अपनी कृति में अर्थगाम्भीर्य, विचार, प्रभाव तथा शैली का निर्वाह करता है।'' यद्यपि सिल्प अपने आप में विस्तृत भाव को समेटे हैं, यहां पर भाषा और शैली का स्पष्टीकरण ही विवेचित है।

जीवन मूल्य : अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व

मानव जीवन के लिए जो कुछ भी ईष्ट, कल्याणकारी, शुभ, आदर्श हो उसे जीवन मूल्य माना गया है। मानव समाज ही मूल्यों को निर्धारित करता है। ग्रहण और अपनी आवश्यकतानुसार ही उसे बनाता, बिगाड़ता और बदलता है। समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उन मूल्यों को पाना चाहता है।

मानव जीवन और मूल्यों का अटूट सम्बन्ध है। मूल्यों का कार्य सामाजिक जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना है। मूल्यों का सृजन व्यक्ति द्वारा होता है तथा अनुमोदन व सत्यापन समाज द्वारा। व्यक्ति वह प्रस्थान बिन्दु है जहाँ से मूल्य अपनी विकास यात्रा शुरू करते हैं और परिवार, समाज तथा राष्ट्र के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए अंततः समूचे विश्व के महाकाय में लीन हो जाते हैं। वस्तुतः जीवन मूल्यों का सम्बन्ध मानव जीवन से है इसलिए जीवन मूल्यों को हर समाज की आधारशिला कह सकते हैं।

डब्ल्यू०एस० अर्बन ने जीवन मूल्यों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि जो मूल्य मानवीय इच्छाओं को तृप्त करें वही जीवन मूल्य है। जीवन मूल्य मानव जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाते हैं।

मानव के बिना जीवन मूल्यों की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि मानवीय मूल्य विराट मानव–जीवन की अगणित शिराओं में संचारित होता रहता है। बिना मानव के जीवन मूल्यों का कोई अस्तित्व ही नहीं।

डॉ० मोहिनी शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य' में मूल्य और जीवन मूल्य को समानार्थी स्वीकार करते हुए कहा है – ''मानव जीवन को सम्यक और सुचारू रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया जिसके आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्व में आई। जीवन के अभाव में मूल्य चिंतन हो ही नहीं सकता। मूल्य चाहे नैतिक हो या दार्शनिक, सामाजिक हो या सौंदर्यगत उनका सीधा संबंध संवेदनात्मक व्यक्ति से ही होता है। अतः सभी मूल्य जीवन मूल्य ही होते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''वे मूल्य जो मानव के आन्तरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं, जीवन मूल्य कहलाते हैं।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूल्य से तात्पर्य जीवन मूल्य से ही है क्योंकि समस्त मूल्य व्यक्ति और जीवन के इर्द–गिर्द घूमते हैं। जीवन के बिना तो मूल्यों की कल्पना ही संभव नहीं है क्योंकि मानव का जीवन, समाज और साहित्य से गहन सम्बन्ध है।

अतः साहित्यकार जिस प्रयोजन को लेकर अपने विचार व्यक्त करता है वही उसका मूल्य है। मूल्य चाहे सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक, नैतिक अथवा सौन्दर्यमूलक ही क्यों न हो, इन सबका सम्बन्ध मानव जीवन से ही होता है और मानव ही इनका निर्धारण एवं संचालन करता है, उसकी आवश्यकता के अनुरूप ये मूल्य बनते, बिगड़ते, परिवर्तित और संशोधित होते रहते हैं।

इस प्रकार जीवन को सद्गति प्रदान करने के लिए एवं सुचारू रूप से चलने के उद्देश्य से जीवन के कुछ मानदण्डों का निर्धारण किया गया है। इन्हीं मानदण्डों के आधार पर मूल्य की अवधारणा बनी जो साहित्य एवं समाज का अभिन्न अंग बन गई है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन–जीने का एक निश्चित एवं सम्यक क्रम दृष्टिगोचर होता है जो जीवन को उच्चादर्श की ओर ले जाता है। अतः ये उत्कर्ष विधायक तत्त्व ही जीवन–मूल्य है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जीवन मूल्य समाज, साहित्य, धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। साहित्य में जिन मूल्यों को पिरोया जाता है वे धर्म एवं दर्शन पर ही आधारित होते हैं। जीवन मूल्य मनुष्य की उन्नति के परिचायक है। इस उन्नति के साथ मनुष्य समाज में प्रतिष्ठा भी चाहता है। अतः मूल्य व्यक्तित्व विकास और सामाजिक प्रतिष्ठा के सोपान भी है।

मूल्य यकायक प्रकट नहीं होते अपितु समाज सापेक्ष होते हैं, मानव की विकासशीलता के साथ विकसित होते रहे हैं। जीवन मूल्यों का निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध है।

जीवन–मूल्य समाज सम्बन्धों को परिवर्तित करने या दृढ़ करने में सहायक होते हैं। आज बदलते युग में सब कुछ बदल रहा है। धर्म, ईश्वर, आस्था, विश्वास का स्थान विज्ञान, मन, बुद्धि तथा तर्क ने ले लिया है। वास्तव में एक सजग संवेदनशील साहित्यकार अपने साहित्य में जीवन और समाज की इन्हीं स्थितियों की प्रतिष्ठा व्याख्या करता है।

संदर्भ सूची

[1]. डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, सांस्कृतिक भारत, पृष्ठ 12
[2]. डॉ० बैजनाथ पुरी, भारतीय संस्कृति के मूल कश्य, पृष्ठ 2
[3]. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृष्ठ 53
[4]. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशक, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1986
[5]. सावित्री शोभा, समाज और संस्कृति, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1970
[6]. डॉ० शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 1992
[7]. वाटसन, जे०बी० बिहेवयरिजम, डब्ल्यू.डब्ल्यू. नोरटन एवं कम्पनी, 1930
[8]. प्रिंस मार्टन, दा एनकनसियन्स, पेपरबैक, 2017 संस्करण
[9]. राजेन्द्र यादव, प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबंध, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018
[10]. रश्मि भारद्वाज, कथा के बहाने (गीताश्री के कथा संसार का आलोचनात्मक अध्ययन), शिल्पायान बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019